अथाष्टमोऽध्यायः
ध्रुवका वन-गमन

मैत्रेय उवाच

सनकाद्या नारदश्च ऋभुर्हंसोऽरुणिर्यतिः ।
नैते गृहान् ब्रह्मसुता ह्यावसन्नूर्ध्वरेतसः ।।१

मृषाधर्मस्य भार्याऽऽसीद्दम्भं मायां च शत्रुहन् ।
असूत मिथुनं तत्तु निर्ऋतिर्जगृहेऽप्रजः ।।२

तयोः समभवल्लोभो निकृतिश्च महामते ।
ताभ्यां क्रोधश्च हिंसा च यद्दुरुक्तिः स्वसा कलिः ।।३

दुरुक्तौ कलिराधत्त भयं मृत्युं च सत्तम ।
तयोश्च मिथुनं जज्ञे यातना निरयस्तथा ।।४

संग्रहेण मयाऽऽख्यातः प्रतिसर्गस्तवानघ ।
त्रिःश्रुत्वैतत्पुमान् पुण्यं विधुनोत्यात्मनो मलम् ।।५

अथातः कीर्तये वंशं पुण्यकीर्तेः कुरूद्वह ।
स्वायम्भुवस्यापि मनोर्हरेरंशांशजन्मनः ।।६

प्रियव्रतोत्तानपादौ शतरूपापतेः सुतौ ।
वासुदेवस्य कलया रक्षायां जगतः स्थितौ ।।७

जाये उत्तानपादस्य सुनीतिः सुरुचिस्तयोः ।
सुरुचिः प्रेयसी पत्युर्नेतरा यत्सुतो ध्रुवः ।।८

एकदा सुरुचेः पुत्रमङ्कमारोप्य लालयन् ।
उत्तमं नारुरुक्षन्तं ध्रुवं राजाभ्यनन्दत ।।९

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—शत्रुसूदन विदुरजी! सनकादि, नारद, ऋभु, हंस, अरुणि और यति—ब्रह्माजीके इन नैष्ठिक ब्रह्मचारी पुत्रोंने गृहस्थाश्रममें प्रवेश नहीं किया (अतः उनके

कोई सन्तान नहीं हुई)। अधर्म भी ब्रह्माजीका ही पुत्र था, उसकी पत्नीका नाम था मृषा। उसके दम्भ नामक पुत्र और माया नामकी कन्या हुई। उन दोनोंको निर्ऋति ले गया, क्योंकि उसके कोई सन्तान न थी ।।१-२।। दम्भ और मायासे लोभ और निकृति (शठता)-का जन्म हुआ, उनसे क्रोध और हिंसा तथा उनसे कलि (कलह) और उसकी बहिन दुरुक्ति (गाली) उत्पन्न हुए ।।३।। साधुशिरोमणे! फिर दुरुक्तिसे कलिने भय और मृत्युको उत्पन्न किया तथा उन दोनोंके संयोगसे यातना और निरय (नरक)-का जोड़ा उत्पन्न हुआ ।।४।। निष्पाप विदुरजी! इस प्रकार मैंने संक्षेपसे तुम्हें प्रलयका कारणरूप यह अधर्मका वंश सुनाया। यह अधर्मका त्याग कराकर पुण्य-सम्पादनमें हेतु बनता है; अतएव इसका वर्णन तीन बार सुनकर मनुष्य अपने मनकी मलिनता दूर कर देता है ।।५।। कुरुनन्दन! अब मैं श्रीहरिके अंश (ब्रह्माजी)-के अंशसे उत्पन्न हुए पवित्रकीर्ति महाराज स्वायम्भुव मनुके पुत्रोंके वंशका वर्णन करता हूँ ।।६।।

महारानी शतरूपा और उनके पति स्वायम्भुव मनुसे प्रियव्रत और उत्तानपाद—ये दो पुत्र हुए। भगवान् वासुदेवकी कलासे उत्पन्न होनेके कारण ये दोनों संसारकी रक्षामें तत्पर रहते थे ।।७।। उत्तानपादके सुनीति और सुरुचि नामकी दो पत्नियाँ थीं। उनमें सुरुचि राजाको अधिक प्रिय थी; सुनीति, जिसका पुत्र ध्रुव था, उन्हें वैसी प्रिय नहीं थी ।।८।।

एक दिन राजा उत्तानपाद सुरुचिके पुत्र उत्तमको गोदमें बिठाकर प्यार कर रहे थे। उसी समय ध्रुवने भी गोदमें बैठना चाहा, परन्तु राजाने उसका स्वागत नहीं किया ।।९।।

तथा चिकीर्षमाणं तं सपत्न्यास्तनयं ध्रुवम् ।
सुरुचिः शृण्वतो राज्ञः सेर्ष्यमाहातिगर्विता ।।१०
न वत्स नृपतेर्धिष्ण्यं भवानारोढुमर्हति ।
न गृहीतो मया यत्त्वं कुक्षावपि नृपात्मजः ।।११
बालोऽसि बत नात्मानमन्यस्त्रीगर्भसम्भृतम् ।
नूनं वेद भवान् यस्य दुर्लभेऽर्थे मनोरथः ।।१२
तपसाऽऽराध्य पुरुषं तस्यैवानुग्रहेण मे ।
गर्भे त्वं साधयात्मानं यदीच्छसि नृपासनम् ।।१३

मैत्रेय उवाच

मातुः सपत्न्याः स दुरुक्तिविद्धः
श्वसन् रुषा दण्डहतो यथाहिः ।
हित्वा मिषन्तं पितरं सन्नवाचं
जगाम मातुः प्ररुदन् सकाशम् ।।१४
तं निःश्वसन्तं स्फुरिताधरोष्ठं
सुनीतिरुत्संग उदूह्य बालम् ।

निशम्य तत्पौरमुखान्नितान्तं
सा विव्यथे यद्गदितं सपत्न्या ।।१५
सोत्सृज्य धैर्यं विललाप शोक-
दावाग्निना दावलतेव बाला ।
वाक्यं सपत्न्याः स्मरती सरोज-
श्रिया दृशा बाष्पकलामुवाह ।।१६
दीर्घं श्वसन्ती वृजिनस्य पार-
मपश्यती बालकमाह बाला ।
मामंगलं तात परेषु मंस्था
भुङ्क्ते जनो यत्परदुःखदस्तत् ।।१७
सत्यं सुरुच्याभिहितं भवान्मे
यद् दुर्भगाया उदरे गृहीतः ।
स्तन्येन वृद्धश्च विलज्जते यां
भार्येति वा वोढुमिडस्पतिर्माम् ।।१८

उस समय घमण्डसे भरी हुई सुरुचिने अपनी सौतके पुत्र ध्रुवको महाराजकी गोदमें आनेका यत्न करते देख उनके सामने ही उससे डाहभरे शब्दोंमें कहा ।।१०।। 'बच्चे! तू राजसिंहासनपर बैठनेका अधिकारी नहीं है। तू भी राजाका ही बेटा है, इससे क्या हुआ; तुझको मैंने तो अपनी कोखमें नहीं धारण किया ।।११।। तू अभी नादान है, तुझे पता नहीं है कि तूने किसी दूसरी स्त्रीके गर्भसे जन्म लिया है; तभी तो ऐसे दुर्लभ विषयकी इच्छा कर रहा है ।।१२।। यदि तुझे राजसिंहासनकी इच्छा है तो तपस्या करके परम पुरुष श्रीनारायणकी आराधना कर और उनकी कृपासे मेरे गर्भमें आकर जन्म ले' ।।१३।।

श्रीमैत्रेयजी कहते हैं—विदुरजी! जिस प्रकार डंडेकी चोट खाकर साँप फुँफकार मारने लगता है, उसी प्रकार अपनी सौतेली माँके कठोर वचनोंसे घायल होकर ध्रुव क्रोधके मारे लंबी-लंबी साँस लेने लगा। उसके पिता चुपचाप यह सब देखते रहे, मुँहसे एक शब्द भी नहीं बोले। तब पिताको छोड़कर ध्रुव रोता हुआ अपनी माताके पास आया ।।१४।। उसके दोनों होठ फड़क रहे थे और वह सिसक-सिसककर रो रहा था। सुनीतिने बेटेको गोदमें उठा लिया और जब महलके दूसरे लोगोंसे अपनी सौत सुरुचिकी कही हुई बातें सुनी, तब उसे भी बड़ा दुःख हुआ ।।१५।। उसका धीरज टूट गया। वह दावानलसे जली हुई बेलके समान शोकसे सन्तप्त होकर मुरझा गयी तथा विलाप करने लगी। सौतकी बातें याद आनेसे उसके कमल-सरीखे नेत्रोंमें आँसू भर आये ।।१६।। उस बेचारीको अपने दुःखपारावारका कहीं अन्त ही नहीं दिखायी देता था। उसने गहरी साँस लेकर ध्रुवसे कहा, 'बेटा! तू दूसरोंके लिये किसी प्रकारके अमंगलकी कामना मत कर। जो मनुष्य दूसरोंको दुःख देता है, उसे स्वयं ही उसका फल भोगना पड़ता है ।।१७।। सुरुचिने जो कुछ कहा है, ठीक ही है; क्योंकि महाराजको मुझे

‘पत्नी’ तो क्या, ‘दासी’ स्वीकार करनेमें भी लज्जा आती है। तूने मुझ मन्दभागिनीके गर्भसे ही जन्म लिया है और मेरे ही दूधसे तू पला है ।।१८।।

आतिष्ठ तत्तात विमत्सरस्त्व-
मुक्तं समात्रापि यदव्यलीकम् ।
आराधयाधोक्षजपादपद्मं
यदीच्छसेऽध्यासनमुत्तमो यथा ।।१९
यस्याङ्घ्रिपद्मं परिचर्य विश्व-
विभावनायात्तगुणाभिपत्तेः ।
अजोऽध्यतिष्ठत्खलु पारमेष्ठ्यं
पदं जितात्मश्वसनाभिवन्द्यम् ।।२०
तथा मनुर्वो भगवान् पितामहो
यमेकमत्या पुरुदक्षिणैर्मखैः ।
इष्ट्वाभिपेदे दुरवापमन्यतो
भौमं सुखं दिव्यमथापवर्ग्यम् ।।२१
तमेव वत्साश्रय भृत्यवत्सलं
मुमुक्षुभिर्मृग्यपदाब्जपद्धतिम् ।
अनन्यभावे निजधर्मभाविते
मनस्यवस्थाप्य भजस्व पूरुषम् ।।२२
नान्यं ततः पद्मपलाशलोचनाद्
दुःखच्छिदं ते मृगयामि कंचन ।
यो मृग्यते हस्तगृहीतपद्मया
श्रियेतरैरंग विमृग्यमाणया ।।२३

मैत्रेय उवाच

एवं संजल्पितं मातुराकर्ण्यार्थागमं वचः ।
संनियम्यात्मनाऽऽत्मानं निश्चक्राम पितुः पुरात् ।।२४
नारदस्तदुपाकर्ण्य ज्ञात्वा तस्य चिकीर्षितम् ।
स्पृष्ट्वा मूर्धन्यघघ्नेन पाणिना प्राह विस्मितः ।।२५

बेटा! सुरुचिने तेरी सौतेली माँ होनेपर भी बात बिलकुल ठीक कही है; अतः यदि राजकुमार उत्तमके समान राजसिंहासनपर बैठना चाहता है तो द्वेषभाव छोड़कर उसीका पालन कर। बस, श्रीअधोक्षजभगवान्‌के चरणकमलोंकी आराधनामें लग जा ।।१९।।